International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(4): 297-302

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(4): 297-302
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 24-05-2021
Accepted: 30-06-2021

डॉ० सोमेश्वर नाथ झा
'दधीचि'
सहायक प्राध्यापक,
म०म०ठा० मिथिला
महाविद्यालय, दरभंगा,
बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० सोमेश्वर नाथ झा
'दधीचि'
सहायक प्राध्यापक,
म०म०ठा० मिथिला
महाविद्यालय, दरभंगा,
बिहार, भारत

निष्कामकर्म से परमात्मा की प्राप्ति

डॉ० सोमेश्वर नाथ झा 'दधीचि'

सारांश
कर्मयोगी निःस्वार्थ भाव से संसार की सेवा के लिए ही सम्पूर्ण कर्म करता है। साधक तो उस सुख का मूल कारण निष्कामता को मानते हैं और दुःखों का कारण कामना को मानते हैं परन्तु संसार में आसक्त मनुष्य वस्तुओं की प्राप्ति से सुख मानते हैं और वस्तुओं की अप्राप्ति से दुःख मानते हैं। मनुष्य के लिए जो भी कर्तव्य कर्म का विधान किया गया है उसका उद्देश्य परम कल्याणस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करना है। निष्काम कर्म से परमात्मा की प्राप्ति होती है। कर्मबंधन से मुक्त होने के लिए निष्काम कर्म करना होगा।

कूटशब्द: कर्मयोगी, साधक, निष्कामता, कर्मबंधन, परमात्मा

प्रस्तावना
प्रकृति में कारण और कार्य का नियम सब लोको में व्याप्त है प्रत्येक कारण का परिणाम कोई न कोई अवश्य होता है हमारे प्रत्येक कार्य में स्थूल कार्य के अतिरिक्त भाव तथा विचार की भी क्रिया होती है। प्रथम हम किसी कार्य के सम्बन्ध में सोचते हैं तब वह विचार सोची वस्तु पर पहुँचकर क्रिया करता है। किसी भी साधन से कर्मयोग, ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग के द्वारा उद्देश्य की सिद्धि हो जाने पर मनुष्य के लिए कुछ भी करना जानना अथवा पाना शेष नही रहता, जो मनुष्य जीवन की सफलता है। कर्म तब होता है जब कुछ न कुछ पाने की कामना होती है कामना तो अभाव से उत्पन्न होती है-

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव:
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।(1)

साधक के सुख का मूल कारण निष्कामता को मानते हैं और दुखों का कारण कामना को मानते है परन्तु संसार में आसक्त मनुष्य वस्तुओं की प्राप्ति से

सुख मानते हैं और वस्तुओं की अप्राप्ति से दुःख मानते हैं, यदि आसक्त मनुष्य भी साधक के समान ही यथार्थ दृष्टि से देखे तो उसको शीघ्र ही स्वतः सिद्ध निष्कामता का अनुभव हो सकता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में

निर्विण्णानां ज्ञायोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्व निर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्''(2)

उद्धव जी से भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे उद्धव मनुष्यों के कल्याण के उद्देश्य से तीन प्रकार के योग हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति जो लोग कर्मों तथा उनके फलों से विरक्त हो गये हैं और उनका त्याग कर चुके हैं वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं परन्तु इसके विपरीत जिनके चित्त में कर्म और उसके फल से वैराग्य नहीं हुआ है, उनमें दुःख बुद्धि नहीं हुई है वे हीं सकाम व्यक्ति कर्मयोग के अधिकारी हैं।

कल्याण के इच्छुक पुरुष कर्म से अपना कार्य सम्पन्न करता है। कर्म से क्या नहीं हो सकता। ऋषि देवता साधक आदि सभी अपने कर्मसाधना से हीं भिन्न-भिन्न प्रकार के विपत्तियों को दूर कर पाता है एक बार ऋषियों के निवास प्रदेश में अत्यन्त व्यापक सुखा पड़ा। अनावृष्टि के प्रकोप से सर्वनाश का दृश्य उपस्थित हो गया। ऋषि अत्यन्त त्रस्त हो गये त्राहि त्राहि मच गयी। ऋषियों की स्तुति सुनकर इन्द्र उपस्थित हुए। इन्द्र ने पूछा अब तक आप सबका जीवन यापन किस प्रकार हुआ है तब ऋषियों में अङ्गिरस शिशु ऋषि ने अन्य ऋषियों की उपस्थिति में जीवन-यापन रहस्य बताये तब इन्द्र द्वारा इसारा करने पर कि कर्म करो ऋषि कर्म में प्रवृत्त हो गये। निम्न ऋचाओं में इस कथा का संकेत किया गया है।

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रूतं भिषग् ब्रऽमा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव।।(3)

अर्थात् ऋषि कर्म या जीवनवृत्तियाँ अनेक प्रकार के कर्म से चलती है। अन्य लोग भी अनेक प्रकार से कर्म द्वारा जीवन यापन करते हैं। बढ़ई या शिल्पकार काष्ट का तक्षण करके जीवन चलाता है। वैद्य रोगी की चिकित्सा से जिविका चलाता है और ब्राह्मण सोमभिषव करने वाले जयमान को चाहता है। इसलिये हे सोम तुम इन्द्र के लिए परितः क्षरित हो।

मृत्युनिवारक त्र्यम्बक मंत्र मृत्युञ्जयमंत्र के रूप में प्रसिद्ध है महर्षि वशिष्ट द्वारा प्रदान किया गया है। आचार्य शौनक, ने ऋग्विधान में इस मंत्र के विषय में बतलाया है कि नियमपूर्वक व्रत तथा इस मन्त्र द्वारा पायस के हवन से दीर्घ आयु प्राप्त होती है, मृत्यु दूर हो जाती है तथा सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है। इस मन्त्र के अधिष्ठाता देव भगवान् शंकर हैं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धानान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्''(4)

वैदिक ऋचाओं के दर्शन के साथ-साथ धर्माधर्म तथा कर्तव्या कर्तव्य के लिए धर्मशास्त्रीय मर्यादाएँ भी नियत की हैं जो उनके द्वारा निर्मित वशिष्ठ धर्मसूत्र में कर्म करने के लिए कहा गया है।

श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः(5)

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वदत नानृतम्।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत माऽपरम्॥(6)

अथर्ववेद में सामूहिक जीवन के विकास की व्यवस्था है यहाँ किसी स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत उन्नति को बहुत स्थान नहीं मिला है। एक दूसरे से मिल जूलकर आपसी सौहार्द एवं सहयोग से कार्य करने की सलाह देते हुए तत्त्वद्रष्टा ऋषि कहते हैं

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि.....।

मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि.....॥(7)

कर्म की प्रधानता इस बात से भी ज्ञात होता है कि किसी भी कार्य के पूर्व मंगलाचरण अपने इष्ट का स्मरण तथा कार्य में किसी भी प्रकार विध्न नही हो अत: विघ्नविनाशक गणेश का पूजन किया जाता है।

गणानां त्वा गणपति ।ः हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ।ः हवामहे
निधीनां त्वा निधिपति ।ः हवामहे॥(8)

हे गणेश भगवान् तुम्हीं समस्त देवगणों में एकमात्र गणपति हो प्रिय विषयों के अधिपति हो एवं ऋद्धि-सिद्धि निधियों के अधिष्ठाता होने से निधिपति हो अतः हम भक्तगण तुम्हारा नाम स्मरण नामोच्चारण और अराधना करते हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण के दसम स्कन्ध में पुनर्जन्म में किए गये कर्मफल की बात श्रीमान वसुदेव जी नन्दबाबा को कहते हैं जब नन्द बाबा गोकुल की रक्षा का भार दूसरे गोपों को सौप दिया और स्वयं कंस का वार्षिक कर चुकाने के लिए मथुरा गये। मथुरा में वसुदेव जी से मिलकर कहते हैं कि आपका मिलना बड़े आनन्द का विषय है। अपने प्रेमियों का मिलना भी बड़ा दुर्लभ है।

दिष्टया संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमान: पुनर्भव:।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम्॥(9)

मनुष्य शरीर से दो प्रकार का फल भोगते हैं- पहला पुराने कर्मों का फल दूसरा पुरुषार्थ कर्म का फल। पुराने कर्मों का फल कीट-पतंग, पशु-पक्षी, देवता, ब्रह्म लोकतक की योनियाँ भोग-योनियाँ हैं। इसलिये उनके लिए ऐसा करो ऐसा मत करो यह विधान नहीं है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि जो कुछ भी कर्म करते हैं उनका वह कर्म भी फलभोग में है कारण कि उनके द्वारा किया जाने वाला कर्म उनके प्रारब्ध के अनुसार पहले से ही रचा हुआ है। उनके जीवन में अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति का जो कुछ भोग होता है, वह भोग भी फलभोग में हीं है परन्तु मनुष्य शरीर तो केवल नये पुरुषार्थ के लिए ही मिला है जिससे यह अपना उद्धार कर ले। इसी प्रकार दो प्रकार के कर्म फल मनुष्य प्राप्त करता है प्रथम पुराने कर्मों का फल जिसके फलस्वरूप अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति आती है दूसरा नया पुरूषार्थ जिससे भविष्य का निर्माण होता है। पुरुषार्थ की प्रधानता है कर्म करने की स्वतंत्रता परन्तु पूर्व में किए गये कर्मों से परतंत्रता प्राप्त है तात्पर्य यह है कि कर्म से फल प्राप्त करता है। फल प्राप्त करने में परतंत्र है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के दसम स्कन्ध में परीक्षित भगवान् कृष्ण के रुप माधुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि- उनके रुप को देखने का सौभाग्य गोपियों को मिला अवश्य कोई पूर्वजन्म का कर्मफल होगा।

ऊचु: पौरा अहो गोप्यस्तप: किमचरन् महत्।
या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ॥(10)

श्रीमद्भागवत महापुराण के दसम स्कन्ध में कहा गया हैं कि वहाँ भगवान् गोपियों को निष्काम कर्म की शिक्षा प्रदानकर उन्हें मोक्ष का मार्ग बताकर अंग संग कर महारास रचाते हैं। निस्वार्थ प्रेम की बात करते हैं। गोपियों के द्वारा भगवान् कृष्ण से पूछने पर कि स्वार्थ प्रेम या निस्वार्थ प्रेम कौन अच्छा है।

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नो भयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भो॥(11)

भगवान् कहते हैं कि प्रेम करने पर प्रेम करना तो लेन देन मात्र है न तो उसमे सौहार्द है और न तो धर्म उनका प्रेम केवल स्वार्थ के लिए है भगवान् निस्वार्थ प्रेम को पूर्ण धर्म मानते हैं कहते है कि

जिस प्रकार माता-पिता अपने संतान से प्रेम करते है वह प्रेम पूर्ण धर्म है।

भजन्त्यभजतो ये वै करुणा: पितरो यथा।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमा:॥(12)

कर्म का फल प्राप्त होता है। कर्मों का फल ही व्यक्ति को ऊंचाई पर ले जाता है। कर्म नित्य है क्योंकि उनका आरम्भ और अन्त होता है तथा उन कर्मों का फल भी नित्य है क्योंकि उसका संयोग और वियोग होता है परन्तु स्वयं कर्म नित्य है। अनित्य कर्म और कर्मफल से नित्य स्वरूप को कोई लाभ नहीं होता है। इस प्रकार निष्कामता आ जाती है और निष्काम होने से सांसारीक बन्धन छूट जाता है और परमात्मतत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। कर्मो में निष्काम होने के लिए साधक में विवेक होना चाहिए और सेवाभाव होनी चाहिये क्योंकि इन दोनों के होने से कर्म ठीक तरह से होगा। अभिप्राय यह है कि अपने लिए कर्म करने में विवेक की प्रधानता होनी चाहिये और दूसरों को सुख आराम पहुँचाने में सेवाभाव की प्रधानता होनी चाहिये।
समता में स्थित रहकर किया गया कर्म परमात्मतत्त्व की प्राप्ति करानेवाली है परन्तु सकाम कर्म जन्म मरण देनेवाला है। इसलिये कर्म में समता का आश्रय होना चाहिये। समता में दीनता नहीं रहेगी परन्तु ज्ञाताज्ञातव्य और प्राप्त प्रातव्य हो जायेगा परन्तु जब सकाम कर्म करता है तो सदा दीन बद्ध हीं रहता है। इसलिए श्रीमद्भागवत् गीता में कहा है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्॥(13)

मनुष्य बुद्धि से पुण्य-पाप का त्याग कर देता है तो उसे पुण्य पाप नहीं लगता वह उससे अलग हो जाता है केवल शरीर के साथ सम्बन्ध जोड़ने से पुण्य पाप लगते हैं। सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाय तो पुण्य पाप से लिप्त नहीं होगा। कुशलता अर्थात निष्काम भाव से किया गया कर्म शास्त्रविहित कर्म है। इस कर्म के द्वारा जन्मरूप बन्धन से मुक्त हो जाते हैं राग-द्वेष कामना वासना ममता आदि दोष किञ्चत्मात्र भी नहीं रहते अतः उसके पुनर्जन्म का कारण ही नहीं रहता वे जन्म-मरण रूप बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत् में राजा रहुगण को जड़ भरतजी के द्वारा उपदेश देते हुए कहा गया है कि जब तक मनुष्य का मन सत्व, रज अथवा तमोगुण के वशीभूत रहता है तब तक वह बिना किसी अंकुश के उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ शुभ अशुभ कर्म करता रहता है।

यावन्मनो रजसा पुरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम्।
चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा॥(14)

शुकदेव जी राजा परीक्षित को कर्म के गहन गति को बताते हुए कहते हैं राजन् कर्म करने वाले पुरुष सात्विक राजस और तामस तीन प्रकार के होते हैं तथा उनकी श्रद्धाओं में भी भेद रहता है। इस प्रकार स्वभाव और श्रद्धा के भेद से उनके कर्मों की गतियाँ भी भिन्न भिन्न होती है और न्यूनाधिक रूप में ये सभी गतियों का फल भी भिन्न-भिन्न होता है और ये सभी गतियों के अनुसार ही कर्म करने वालों को प्राप्त होती है। इसी प्रकार निषिद्ध कर्म पाप करनेवालों को भी उनकी श्रद्धा की असमानता के कारण समान फल नहीं देता। अत: अनादि अविद्या के वशीभूत होकर, कामनापूर्वक किये हुए उन निषिद्ध कर्मों के परिणाम में जो हजारों तरह की नारकी गतियाँ होती है, उनका विस्तार से वर्णन किया गया है।

त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति। अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया

वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः॥ (15)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में भी कर्मफल की चर्चा करते हुए राजा दशरथ कहते हैं कि मैं भी अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ। रानी कौशल्या से कहे कि एक बार वन में एक मुनिकुमार की हत्या मुझसे हो गयी तब मैं स्वयं अपना अपराध स्वीकार करते हुए मुनि के पास पहुंचा मुनि को सम्पूर्ण वृतांत बताते हुए अपने अपराध की बात स्वीकार किया तो हमारे द्वारा अपराध स्वीकार करने पर मुनि ने कहा अच्छा किया, अपना पाप स्वयं आकर बता दिया नहीं तो तुम्हारा मस्तक हजारों टुकड़ो में फट जाता

यद्येतदशुभं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम्।
फलेन्मूर्धा स्म ते राजन् सद्यः शतसहस्रधा।।(16)

राजा दशरथ ने स्वीकार किया था कि मेरे द्वारा ऐसा निन्दित कर्म हो गया है जिसकी निन्दा सत्पुरुषों ने किया है।

क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः।
सज्जनावमंत दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम्।।(17)

महात्मन! मै आपका पुत्र नहीं, दशरथ नामका एक क्षत्रिय हूँ। मैने अपने कर्मवश यह ऐसा दुख पाया है, जिसकी सत्पुरुषों ने निन्दा की है।
श्रीमद्देवीभागवत् महापुराण में भी कर्म की गति का गहन विवेचन किया गया है। कर्म के आधार पर ब्रऽमाण्ड का अविर्भाव हुआ है। कर्म की गति जानने में देवता भी समर्थ नहीं हैं मानवों की क्या बात जब इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड का आविर्भाव हुआ, उसी समय से कर्म के द्वारा सभी की उत्पत्ति होती आ रही है, इस विषय में सन्देह नहीं है आदि तथा अन्त से रहित होते हुए भी समस्त जीव कर्मरूपी बीज से उत्पन्न होते हैं वे जीव नानाविध योनियों में बार-बार उत्पन्न होते हैं और मरते है। कर्म से रहित जीव का देह-संयोग कदापि सम्भव नहीं है।

राजन् किमेतद्वक्तव्यं कर्मणां गहना गतिः।
दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा।
यदा समुत्थितं चैतद् ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम्॥
कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः।
अनादिनिधना जीवाः कर्मबीजासमुद्भवाः॥
नानायोनिषु जायन्ते म्रियन्ते च पुनः पुनः।
कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन॥(18)

गरुड पुराण-सारोद्धार में भी कर्म के फल की चर्चा विस्तार से किया गया है 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' जो प्राणी जन्म ग्रहण करता है उसे समय आने पर मरना भी पड़ता है और जो मरता है उसे जन्म लेना पड़ता है इसे ही पुनर्जन्म' का सिद्धान्त कहते हैं सनातन धर्म की यह विशेषता है। अतएव कर्म के फल का भोग अवश्य भोगना पड़ता है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि(19)

शुभ और अशुभ कर्मों से अनन्त जन्मों के किये हुए संचित शुभ-अशुभ कर्म का भोग होता है जितने भी कर्म होते हैं वे सभी वाह्य होते हैं अर्थात् शरीर मन बुद्धि इन्द्रियों के द्वारा किये जाते हैं अतएव शुभ और अशुभ कर्मों का अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में जो फल आता है वह भी वाह्य ही होता है परन्तु भूलवश मनुष्य उन परिस्थितियों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर सुखी दुखी होता रहता है। सुखी दुखी होना हीं कर्मबंधन है इसी कर्म बन्धन से बंधकर जन्म मरण के चक्कर काटता रहता है। यदि मनुष्य की दृष्टि अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों पर न रहकर भगवान् पर हो तो मनुष्य भगवान् का विधान

मानने लगता है उसे कर्म का फल नहीं मानता है तब कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥(20)

जीव जब अपना कर्म भगवान् को समर्पित कर देता है तो निष्काम कर्म हो जाता है। जब कर्म को अपना नहीं मानता तो बन्धन नहीं होता। कर्म का सम्बन्ध जब अपने से नहीं रहता तो वह निष्काम मोक्ष प्रदान करता है। मोक्ष से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

संदर्भ:

1. श्रीमद्भगवद्गीता गीता- 3/17
2. श्रीमद्भागवत महापुराण- 11/20/7
3. ऋग्वेद- 9/112/1
4. ऋग्वेद- 6/59/12
5. वशिष्टधर्मसूत्र- 1/3
6. वशिष्टधर्मसूत्र- 30/1
7. अथर्ववेद- 6/94/2
8. शुक्ल यजुर्वेद- 23/19
9. श्रीमद्भागवत महापुराण- 10/5/24
10. श्रीमद्भागवत महापुराण- 10/41/31
11. श्रीमद्भागवत महापुराण- 10/32/16
12. श्रीमद्भागवत महापुराण- 10/32/18
13. श्रीमद्भागवत गीता- 2/50
14. श्रीमद्भागवत महापुराण- 5/11/4
15. श्रीमद्भागवत महापुराण- 5/26/2, 3
16. वाल्मीकीयरामायण-अयोध्याकाण्ड- 64/22
17. वाल्मीकीयरामायण-अयोध्याकाण्ड- 64/13
18. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण- 4/2/2-5
19. गरुणपुराण-सारोद्धार- 5/57
20. श्रीमद्भागवत गीता-9/28